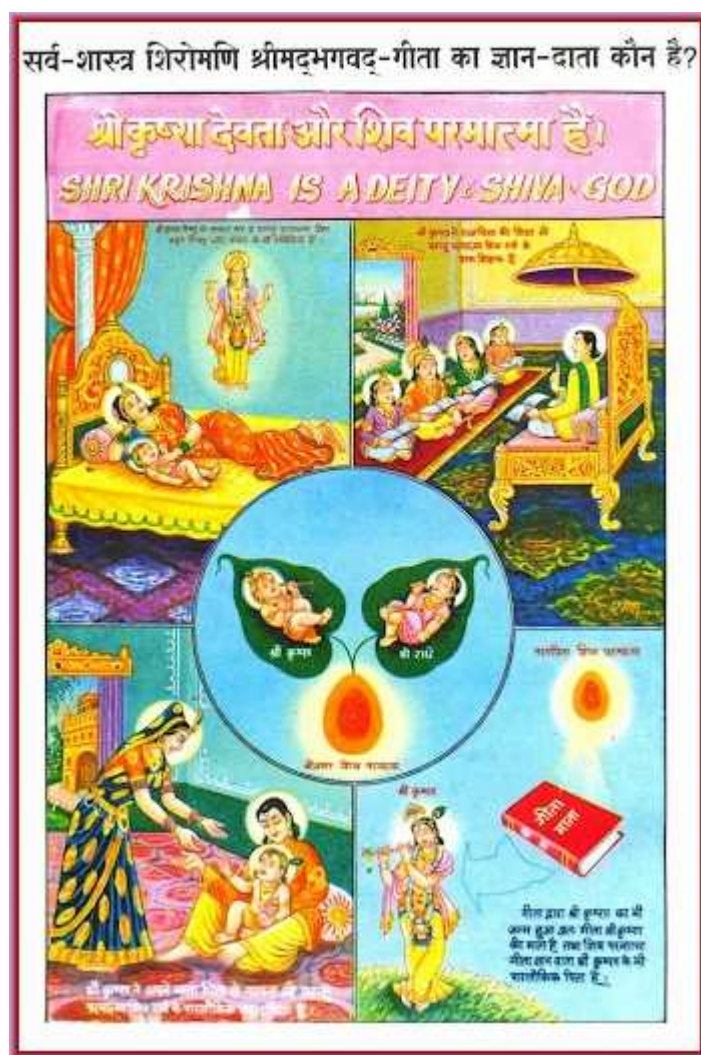


## सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद् भगवद् गीता का ज्ञान-दाता कौन है ?



यह कितने आश्चर्य की बात है कि आज मनुष्यमात्र को यह भी नहीं मालूम की परमप्रिय परमात्मा शिव, जिन्हें "ज्ञान का सागर" तथा "कल्याणकारी" माना जाता है, ने मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए जो ज्ञान दिया, उसका शास्त्र कौनसा है ? भारत में यद्यपि गीता ज्ञान को भगवान द्वारा दिया हुआ ज्ञान माना जाता है, तो आज भी सभी लोग यही मानते हैं गीता गया श्रीकृष्ण ने द्वापर युग के अंत में युद्ध के मैदान में, अर्जुन के रथ पर सवार होकर दिया था । गीता-ज्ञान द्वापर युग में नहीं दिया गया बल्कि संगम युग में दिया गया ।

चित्र में यह अदभुत रहस्य चित्रित किया गया है कि वास्तव में गीता-ज्ञान निराकार, परमपिता परमात्मा शिव ने दिया था । और फिर गीता ज्ञान से सतयुग में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । अतः गोपेश्वर परमपिता शिव श्रीकृष्ण के भी परलौकिक पिता है और गीता श्रीकृष्ण की भी माता है ।

यह तो सभी जानते हैं कि गीता-ज्ञान देने का उद्देश पृथ्वी पर धर्म की पुनः स्थापना ही था । गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है कि "मैं अधर्म का विनाश तथा सत्यधर्म की स्थापनार्थ ही अवतरित होता हूँ ।" अतः भगवान के अवतरित होने तथा गीता ज्ञान देने के बाद तो धर्म की तथे देवी स्वभाव वाले सम्प्रदाय की पुनः स्थापना होनी चाहिए परन्तु सभी जानते और मानते हैं की द्वापरयुग के बाद तो कलियुग ही शुरू हुआ जिसमें तो धर्म की अधिक हनी हुई और मनुष्यों का स्वभाव तमोप्रधान

अथवा आसुरी ही हुआ अतः जो लोग यह मानते हैं कि भगवान ने गीता ज्ञान द्वापरयुग के अंत में दिया, उन्हें सोचना चाहिए कि क्या गीता ज्ञान देने और भगवान के अवतरित होने का यही फल हुआ ? क्या गीता ज्ञान देने के बाद अधर्म का युग प्रारम्भ हुआ ? स्पष्ट है कि उनका विवेक इस प्रश्न का उत्तर "न" शब्द से ही देगा ।

भगवान के अवतरण होने के बाद कलियुग का प्रारंभ मानना तो भगवान की ग्लानी करना है क्योंकि भगवान का यथार्थ परिचय तो यह है कि वे अवतरित होकर पृथ्वी को असुरों से खाली करते हैं । और यहाँ धर्म को पूर्ण कलाओं सहित स्थापित करके तथा नर को श्रीनारायण मनुष्य की सदगति करते हैं । भगवान तो सृष्टि के " बीज रूप " है तथा स्वरूप है, अतः इसी धरती पर उनके आने के पश्चात् तो नए सृष्टि-वृक्ष, अर्थात् नई सतयुगी सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है । इसके अतिरिक्त, यदि द्वापर के अंत में गीता ज्ञान दिया गया होता तो कलियुग के तमोप्रधान काल में तो उसकी प्रारब्ध ही न भोगी जा सकती । आज भी आप सीखते हैं कि दिवाली के दिनों में श्री लक्ष्मी का आह्वान करने के लिए भारतवासी अपने घरों को साफसुथरा करते हैं तथा दीपक आदि जलाते हैं इससे स्पष्ट है कि अपवित्रता और अंधकार वाले स्थान पर तो देवता अपने चरण भी नहीं धरते । अतः श्रीकृष्ण का अर्थात् लक्ष्मीपति श्रीनारायण का जन्म द्वापर में मानना महान भूल है । उनका जन्म तो सतयुग में हुआ जबकि सभी मित्र -सम्बन्धी तथा प्रकृति-पदार्थ सतोप्रधान एवं दिव्य थे और सभी का आत्मा-रूपी दीपक जगा हुआ था तथा सृष्टि में कोई भी म्लेच्छ तथा क्लेश न था ।

अतः उपर्युक्त से स्पष्ट है कि न तो श्रीकृष्ण ही द्वापरयुग में हुए और न ही गीता-ज्ञान द्वापर युग के अंत में दिया गया बल्कि निराकार, पतितपावन परमात्मा शिव ने कलियुग के अंत और सतयुग के आदि के संगम समय, दर्म-ग्लानी के समय, बहमा तन में दिव्य जन्म लिया और गीता -ज्ञान देकर सतयुग कि तथा श्रीकृष्ण ( श्रीनारायण) के स्वराज्य कि स्थापना कि श्रीकृष्ण के तो अपने माता-पिता, शिक्षक थे परन्तु गीता-ज्ञान सर्व आत्माओं के माता-पिता शिव ने दिया ।

## गीता-ज्ञान हिंसक युद्ध करने के लिए नहीं दिया गया था



आज परमात्मा के दिव्य जन्म और "रथ" के स्वरूप को न जानने के कारण लोगो कि यह मान्यता दृढ़ है कि गीता-ज्ञान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ एम् सवार होकर लड़ाई के मैदान में दिया आप ही सोचिये कि जबकि अहिंसा को धर्म का परम लक्षण माना गया है और जबकि धर्मात्मा अथवा महात्मा लोग नहो अहिंसा का पालन करते और अहिंसा की शिक्षा देते है तब क्या भगवान नव भला किसी हिंसक युद्ध के लिए किसी को शिक्षा दी होगी ? जबकि लौकिक पिता भी अपने बच्चो को यह शिक्षा देता है कि परस्पर न लड़ो तो क्या सृष्टि के परमपिता, शांति के सागर परमात्मा ने मनुष्यो को परस्पर लड़ाया

होगा ! यह तो कदापि नहीं हो सकता भगवान तो देवी स्वभाव वाले संप्रदाय की तथा सर्वोत्तम धर्म की स्थापना के लिए ही गीता-ज्ञान देते है और उससे तो मनुष्य राग, द्वेष, हिंसा और क्रोध इत्यादि पर विजय प्राप्त करते है । अतः वास्तविकता यह है कि निराकार परमपिता परमात्मा शिव ने इस सृष्टि रूपी कर्मक्षेत्र अथवा कुरुक्षेत्र पर, प्रजापिता ब्रह्मा (अर्जुन) के शरीर रूपी रथ में सवार होकर माया अर्थात् विकारो से ही युद्ध करने कि शिक्षा दी थी , परन्तु लेखक ने बाद में अलंकारिक भाषा में इसका वर्णन किया तथा चित्रकारों ने बाद में शरीर को रथ के रूप में अंकित करके प्रजापिता ब्रह्मा की आत्मा को भी उस रथ में एक मनुष्य (अर्जुन) के रूप में चित्रित किया । बाद में वास्तविक रहस्य प्रायः लुप्त हो गया और स्थूल अर्थ ही प्रचलित हो गया ।

संगम युग में भगवान शिव ने जब प्रजापिता ब्रह्मा के तन रूपी रथ में अवतरित होकर ज्ञान दिया और धर्म की स्थापना की, तब उसके पश्चात् कलियुगी सृष्टि का महाविनाश हो गया और सतयुग स्थापन हुआ । अतः सर्व-महान परिवर्तन के कारण बाद में यह वास्तविक रहस्य प्रत्युप्त हो गया । फिर जब द्वापरयुग के भक्तिकाल में गीता लिखी गयी तो बहुत पहले ( संगमयुग में) हो चुके इस वृत्तांत का रूपांतरण व्यास ने वर्तमानकाल का प्रयोग करके किया तो समयांतर में गीता-ज्ञान को भी व्यास के जीवन-काल में, अर्थात् " द्वापरयुग" में दिया गया ज्ञान मान लिया परन्तु इस भूल से संसार में बहुत बड़ी हानि हुई क्योंकि लोगो को यह रहस्य ठीक रीति से मालूम होता कि गीता-ज्ञान निराकार परमपिता परमात्मा शिव ने दिया जो कि श्रीकृष्ण के भी परलौकिक पिता है और सभी धर्मों के अनुयायियों के परम पूज्य तथा सबके एकमात्र सादगति दाता तथा राज्य-भग्य देने वाले है, तो सभी धर्मों के अनुयायी गीता को ही संसार का सर्वोत्तम शास्त्र मानते तथा उनके महावाक्यों को परमपिता के महावाक्य मानकर उनको शिरोधार्य करते और वे भारत को ही अपना सर्वोत्तम तीर्थ मानते अथः शिव जयंती को गीता -जयंती तथा गीता जयंती को शिव जयंती के रूप में भी मानते । वे एक ज्योतिस्वरूप, निराकार परमपिता, परमात्मा शिव से ही योग-युक्त होकर पावन बन जाते तथा उससे सुख-शांति की पूर्ण विरासत ले लेते परन्तु आज उपर्युक्त सर्वोत्तम रहस्यों को न जानने के कारण और गीता माता के पति सर्व मान्य निराकार परमपिता शिव के स्थान पर गीता-पुत्र श्रीकृष्ण देवता का नाम लिख देने के कारण गीता का ही खंडन हो गया और संसार में घोर अनर्थ, हाहाकार तथा पापाचार हो गया है और लोग एक निराकार परमपिता की आज्ञा ( मन्मना भव अर्थात् एक मुझ हो को याद करो ) को भूलकर व्यभिचारी बुद्धि वाले हो गए है ! ! आज फिर से उपर्युक्त रहस्य को जानकर परमपिता परमात्मा शिव से योग-युक्त होने से पुनः इस भारत में श्रीकृष्ण अथवा श्रीनारायण का सुखदायी स्वराज्य स्थापन हो सकता है और हो रहा है ।

**जीवन कमल पुष्प समान कैसे बनायें ?**

स्नेह और सौहाद्र के प्रभाव के कारण आज मनुष्य को घर में घर-जैसा अनुभव नहीं होता । एक मामूली कारण से घर का पूरा वातावरण बिगड़ जाता है । अब मनुष्य





की वफादारी और विश्वास्पात्रता भी टिकाऊ और दृढ़ नहीं रहे । नैतिक मूल्य अपने स्तर से काफी गिर गए हैं । कार्यालय हो या व्यवसाय, घर हो या रसोई, अब हर जगह परस्पर संबंधों को सुधारने, स्वयं को उससे ढालने और मिलजुल कर चलने की जरूरत है । अपनी स्थिति को निर्दोष एवं संतुलित बनाये रखने के लिए हर मानव को आज बहुत मनोबल इकट्ठा करने की आवश्यकता है । इसके लिए योग बहुत ही सहायक हो सकता है ।

जो ब्रह्माकुमार है, वे दुसरो को भी शांति का मार्ग दर्शाना एक सेवा अथवा अपना कर्तव्य समझते हैं । ब्रह्माकुमार जन-जन

को यह ज्ञान दे रहा है कि "शांति" पवित्र जीवन का एक फल है और पवित्रता एवं शांति के लिए परमपिता परमात्मा का परिचय तथा उनके साथ मान का नाता जोड़ना जरूरी है । अतः वह उन्हें राजयोग-केंद्र अथवा ईश्वरीय मनन चिंतन केंद्र पर पधारने के लिए आमंत्रित करता है, जहाँ उन्हें यह आवश्यक ज्ञान दिया जाता है कि राजयोग का अभ्यास कैसे करे और जीवन को कमल पुष्प के समान कैसे बनाये इस ज्ञान और योग को समझने का फल यह होता है कि कोई कार्यालय में काम कर रहा हो या रसोई में कार्यरत हो तो भी मनुष्य शांति के सागर परमात्मा के साथ स्वयं का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है । इस सब का श्रेष्ठ परिणाम यह होता है कि सारा परिवार प्यार और शांति के सूत्र में पिरो जाता है, वे सभी वातावरण में आन्नद एवं शांति का अनुभव करते हैं और अब वह परिवार एक सुव्यवस्थित एवं संगठित परिवार बन जाता है । दिव्य ज्ञान के द्वारा मनुष्य विकार तो छोड़ देता है और गुण धारण कर लेता है । इसके लिए, जिस मनोबल की जरूरत होती है, वह

मनुष्य को योग से मिलता है । इस प्रकार मनुष्य अपने जीवन को कमल पुष्प के समान बनाने के योग्य हो जाता है ।

कमल की यह विशेषता है कि वह जल में रहते हुए जल से नायर होकर रहता है । हालाँकि कमल के अन्य सम्बन्धी, जैसे कि कमल ककड़ी, कमल डोडा इत्यादि हैं, परन्तु फिर भी कमल उन सभी से ऊपर उठकर रहता है । इसी प्रकार हमें भी अपने सम्बंधियों एवं मित्रजनों के बीच रहते हुए उनसे भी न्यारा, अर्थात् मोहजीत होकर रहना चाहिए । कुछ लोग कहते हैं कि गृहस्थ में ऐसा होना असम्भव है । परन्तु हम देखते हैं कि अस्पताल में नर्स अनेक बच्चों को सँभालते हुए भी उनमें मोह-रहित होती है । इसे ही हमें भी चाहिए कि हम सभी को परमपिता परमात्मा के वत्स मानकर न्यासी ( ट्रस्टी ) होकर उनसे व्यवहार करें । एक न्यायाधीश भी खुशी या गमी के निर्णय सुनाता है, परन्तु वह स्वयं उनके प्रभावाधीन नहीं होता । ऐसे ही हम भी सुख-दुःख की परिस्थितियों में साक्षी होकर रहे, इसी के लिए हमें सहज राजयोग सिखने की आवश्यकता है ।

### राजयोग का आधार तथा विधि

सम्पूर्ण स्थिति को प्राप्त करने के लिए और शीघ्र ही अध्यात्मिक में उन्नति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को राजयोग के निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है, अर्थात् चलते फिरते और कार्य-व्यवहार करते हुए भी परमात्मा की स्मृति में स्थित होने को जरूरत है ।

यद्यपि निरंतर योग के बहुत लाभ हैं । और निरंतर योग द्वारा ही मनुष्य सर्वोत्तम अवस्था को प्राप्त कर सकता है । तथापि विशेष रूप से योग में बैठना आवश्यक है । इसीलिए चित्र में दिखाया गया है कि परमात्मा को याद करते समय हम अपनी बुद्धि सब तरफ से हटाकर एक जोतिर्बिंदु परमात्मा शिव से जुटानी चाहिए मान चंचल होने के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार अथवा शास्त्र और गुरुओं की तरफ भागता है । लेकिन अभ्यास के द्वारा हमें इसको एक परमात्मा की याद में ही स्थित करना है । अतः देह सहित देह के सर्व-सम्बंधों को भूल कर आत्म-स्वरूप में स्थित होकर, बुद्धि में जोतिर्बिंदु परमात्मा शिव की स्नेहयुक्त स्मृति में रहना ही



वास्तविक योग है जैसा की चित्र में दिखलाया गया है ।

कई मनुष्य योग को बहुत कठिन समझते हैं, वे कई प्रकार की हाथ क्रियाएं तप अथवा प्राणायाम करते रहते हैं । लेकिन वास्तव में "योग" अति सहज है जैसे की एक बच्चे को अपने देहधारी पिता की सहज और स्वतः याद रहती है वैसे ही आत्मा को अपने पिता परमात्मा की याद स्वतः और सहज होनी चाहिए इस अभ्यास के लिए यह सोचना चाहिए कि- "मैं एक आत्मा हूँ, मैं ज्योति -बिंदु परमात्मा शिव की अविनाशी संतान हूँ जो परमपिता ब्रह्मलोक के वासी है, शांति के सागर, आनंद के सागर प्रेम के सागर और सर्वशक्तिमान है --।" ऐसा

मनन करते हुए मन को ब्रह्मलोक में परमपिता परमात्मा शिव पर स्थित करना चाहिए और परमात्मा के दिव्य-गुणों और कर्तव्यों का ध्यान करना चाहिए ।

जब मन में इस प्रकार की स्मृति में स्थित होगा । तब सांसारिक संबंधो अथवा वस्तुओं का आकर्षण अनुभव नहीं होगा जितना ही परमात्मा द्वारा सिखाया गये ज्ञान में निश्चय होगा, उतना ही सांसारिक विचार और लौकिक संबंधियों की याद मन में नही आयेगी । और उतना ही अपने स्वरूप का परमप्रिय परमात्मा के गुणों का अनुभव होगा ।

आज बहुत से लोग कहते हैं कि हमारा मन परमात्मा की स्मृति में नहीं टिकता अथवा हमारा योग नहीं लगता इसका एक कारण तो यह है कि वे "आत्म-निश्चय" में स्थित नहीं होते आप जानते हैं कि जब बिजली के दो तारों को जोड़ना होता है तब उनके ऊपर के रबड़ को हटाना पड़ता है, तभी उनमें करंट आता है इसी प्रकार,

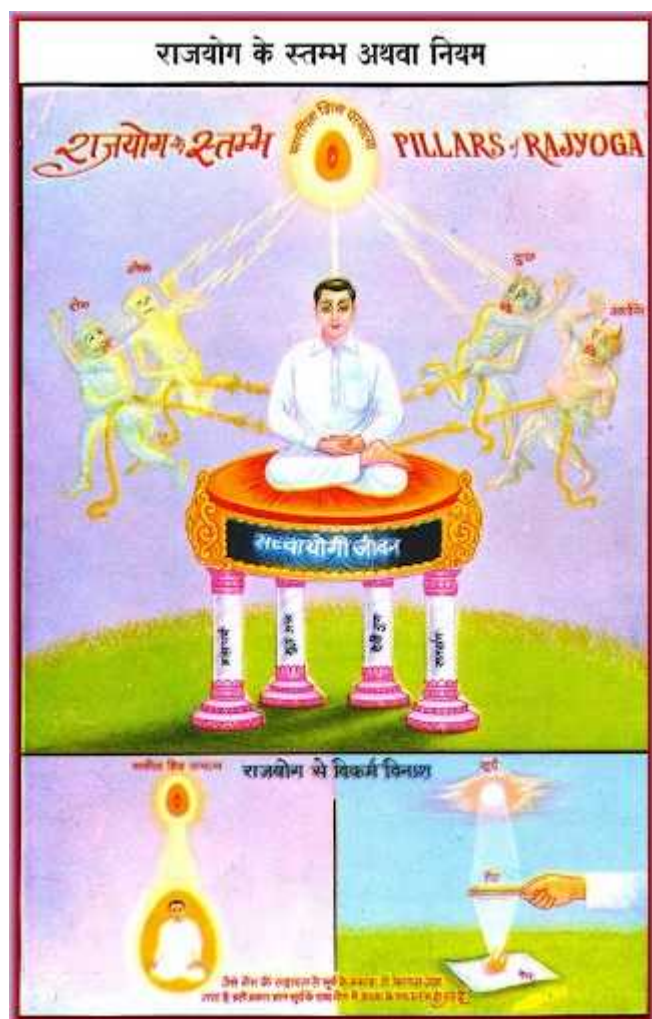


यदि कोई निज देह के बहन में होगा तो उसे भी अव्यक्त अनुभूति नहीं होगी, उसके मन की तार परमात्मा से नहीं जुड़ सकती ।

दूसरी बात यह है कि वे तो परमात्मा को नाम-रूप से न्यारा व् सर्वव्यापक मानते हैं, अतः वे मन को कोई ठिकाना भी नहीं दे सकते । परन्तु अब तो यह स्पष्ट किया गया है कि परमात्मा का दिव्य-नाम शिव, दिव्य-रूप ज्योति-बिंदु और दिव्यधाम परमधाम अथवा ब्रह्मलोक है अतः वहा मन को टिकाया जा सकता है ।

तीसरी बात यह है कि उन्हें परमात्मा के साथ अपने घनिष्ट सम्बन्ध का भी परिचय नहीं है, इसी कारण परमात्मा के प्रति उनके मन में घनिष्ट स्नेह नहीं अब यह ज्ञान हो जाने पर हमें ब्रह्मलोक के वासी परमप्रिय परमपिता शिव-जोती-बिंदु कि स्मृति में रहना चाहिए ।

### राजयोग के स्तम्भ अथवा नियम



वास्तव में 'योग' का अर्थ - ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, सर्व शक्तिवान, पतितपावन परमात्मा शिव के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोड़ना है ताकि आत्मा को भी शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता, शक्ति और दिव्यगुणों की विरासत प्राप्त हो ।

योग के अभ्यास के लिए उसे आचरण सम्बन्धी कुछ नियमों का अथवा दिव्य अनुशासन का पालन करना होता है क्योंकि योग का उद्देश्य मन को शुद्ध करना, दृष्टी कोण में परिवर्तन लाना और मनुष्य के चित्त को सदा प्रसन्न अथवा हर्ष-युक्त



बनाना है । दूसरे शब्दों में योग की उच्च स्थिति किन्हीं आधारभूत स्तम्भों पर टिकी होती है ।

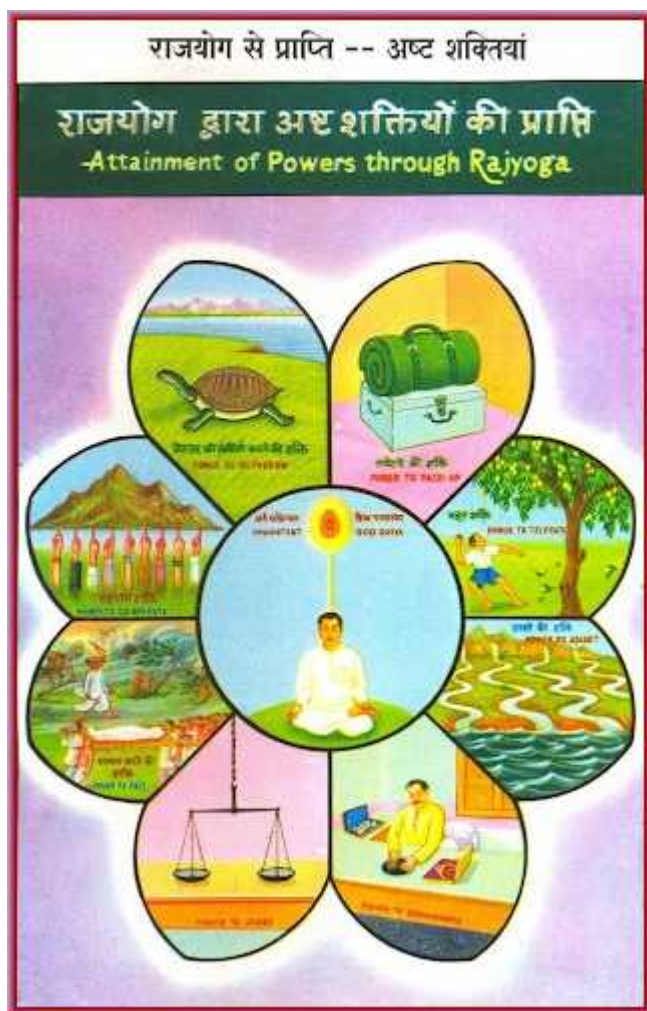
इनमें से एक है - ब्रह्मचर्य या पवित्रता । योगी शारीरिक सुंदरता या वासना-भोग की और आकर्षित नहीं होता क्योंकि उसका दृष्टी कोण बदल चुका होता है । वह आत्मा की सुंदरता को ही पूर्ण महत्व देता है । उसका जीवन 'ब्रह्मचर्य' शब्द के वास्तविक अर्थ में ढला होता है । अर्थात् उसका मन ब्रह्म में स्थित होता है और वह देह की अपेक्षा विदेही (आत्माभिमानि) अवस्था में रहता है । अतः वह सबको भाई भाई के रूप में देखता है और आत्मिक प्रेम व सम्बन्ध का ही आनन्द लेता है । यहाँ आत्मिक स्मृति और ब्रह्मचर्य इसे ही महान शारीरिक शक्ति, कार्य-क्षमता, नैतिक बल और आत्मिक शक्ति देते हैं । यह उसके मनोबल को बढ़ाते हैं और उसे निर्णय शक्ति, मानसिक संतुलन और कुशलता देते हैं ।

दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ है - सात्विक आहार । मनुष्य जो आहार कर्ता है उसका उसके मस्तिष्क पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है । इसलिए योगी मांस, अंडे उतेजक पेय या तम्बाकू नहीं लेता । अपना पेट पालने के लिए वह अन्य जीवों की हत्या नहीं करता, न ही वह अनुचित साधनों से धन कमाता है । वह पहले भगवान को भोग लगाता और तब प्रशाद के रूप में उसे ग्रहण करता है । भगवान द्वारा स्वीकृत वह भोजन उसके मन को शान्ति व पवित्रता देता है, तभी 'जैसा अन्न वैसा मन' की कहावत के अनुसार उसका मन शुद्ध होता है और उसकी कामना कल्याणकारी तथा भावना शुभ बनी रहती है ।

अन्य महत्वपूर्ण स्तम्भ है - 'सत्संग' । 'जैसा संग वैसा रंग' - इस कहावत के अनुसार योगी सदा इस बात का ध्यान रखता है कि उसका सदा 'सत-चित्त-आनन्द' स्वरूप परमात्मा के साथ ही संग बना रहे । वह कभी भी कुसंग में अथवा अश्लील साहित्य अथवा कुविचारों में अपना समय व्यर्थ नहीं गंवाता । वह एक ही प्रभु की याद व लग्न में मग्न रहता है तथा अज्ञानी, मिथ्या-अभिमानि अथवा विकारी, देहधारी मनुष्यों को याद नहीं करता और न ही उनसे सम्बन्ध जोड़ता है ।

चौथा स्तम्भ है - दिव्यगुण । योगी सदा अन्य आत्माओं को भी अपने दिव्य-गुणों, विचारों तथा दिव्य कर्मों की सुगंध से अगरबत्ती की तरह सुगन्धित करता रहता है, न कि आसुरी स्वभाव, विचार व कर्मों के वशीभूत होता है । विनम्रता, संतोष, हर्षितमुखता, गम्भीरता, अंतर्मुखता, सहनशीलता और अन्य दिव्य-गुण योग का मुख्य आधार है । योगी स्वयं तो इन गुणों को धारण करता ही है, साथ ही अन्य दुखी भूली-भटकी और अशान्त आत्माओं को भी अपने गुणों का दान करता है और उसके जीवन में सच्ची सुख-शान्ति प्रदान करता है । इन नियमों को पालन करने से ही मनुष्य सच्चा योगी जीवन बना सकता है तथा रोग, शोक, दुःख व अशान्ति रूपी भूतों के बन्धन से छुटकारा पा सकता है ।

### राजयोग से प्राप्ति--अष्ट शक्तियां



राजयोग के अभ्यास से, अर्थात् मन का नाता परमपिता परमात्मा के साथ जोड़ने से, अविनाशी सुख-शांति की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही कई प्रकार की अध्यात्मिक शक्तियां भी आ जाती हैं इनमें से आठ मुख्य और बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

इनमें से एक है "सिकोड़ने और फैलानी की शक्ति" जैसे कछुआ अपने अंगों को जब चाहे सिकोड़ लेता है, जब चाहे उन्हें फैल लेता है, वैसे ही राजयोगी जब चाहे अपनी इच्छानुसार अपनी कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्म करता है और जब चाहे विदेही एवं शांत अवस्था में रह सकता है । इस प्रकार विदेही अवस्था में रहने से उस पर माया का वार

नहीं होगा ।

दूसरी शक्ति है - "समेटने की शक्ति" इस संसार को मुसाफिर खाना तो सभी कहते हैं लेकिन व्यवहारिक जीवन में वे इतना तो विस्तार कर लेते हैं कि अपने कार्य और बुद्धि को समेटना चाहते हुए भी समेत नहीं पाते, जबकि योगी अपनी बुद्धि को इस विशाल दुनिया में न फैला कर एक परमपिता परमात्मा की तथा आत्मिक सम्बन्ध की याद में ही अपनी बुद्धि को लगाये रखता है। वह कलियुगी संसार से अपनी बुद्धि और संकल्पों का बिस्तर व् पेटी समेटकर सदा अपने घर-परमधाम- में चलने को तैयार रहता है।

तीसरी शक्ति है "सहन शक्ति" जैसे वृक्ष पर पत्थर मारने पर भी मीठे फल देता है और अपकार करने वाले पर भी उपकार करता है, वैसे ही एक योगी भी सदा अपकार करने वालों के प्रति भी शुभ भावना और कामना ही रखता है।

योग से जो चोथी शक्ति प्राप्त होती है वह है "समाने की शक्ति" योग का अभ्यास मनुष्य की बुद्धि विशाल बना देता है और मनुष्य गभीरता और मर्यादा का गुण धारण करता है। थोड़ी सी खुशिया, मान, पद पाकर वह अभिमान नहीं बन जाता और न ही किसी प्रकार की कमी आने पर या हानि होने के अवसर पर दुखी होता है वह तो समुद्र की तरह सदा अपने दैवी कुल की मर्यादा में बंधा रहता है और गंभीर अवस्था में रहकर दूसरी आत्माओं के अवगुणों को न देखते हुए केवल उनसे गुण ही धारण करता है।

योग से जो अन्य शक्ति जो मिलती है वह है "परखने की शक्ति" जैसे एक पारखी (जौहरी) आभूषणों को कसौटी पर परखकर उसकी असल और नकल को जन जाता है, इसे ही योगी भी, किसी भी मनुष्यात्मा के संपर्क में आने से उसको परख लेता है और उससे सच्चाई या झूठ कभी छिपा नहीं रह सकता। वह तो सदा सच्चे ज्ञान-रत्नों को ही अपनाता है तथा अज्ञानता के झूठे कंकड़, पत्थरों में अपनी बुद्धि नहीं फसाता।

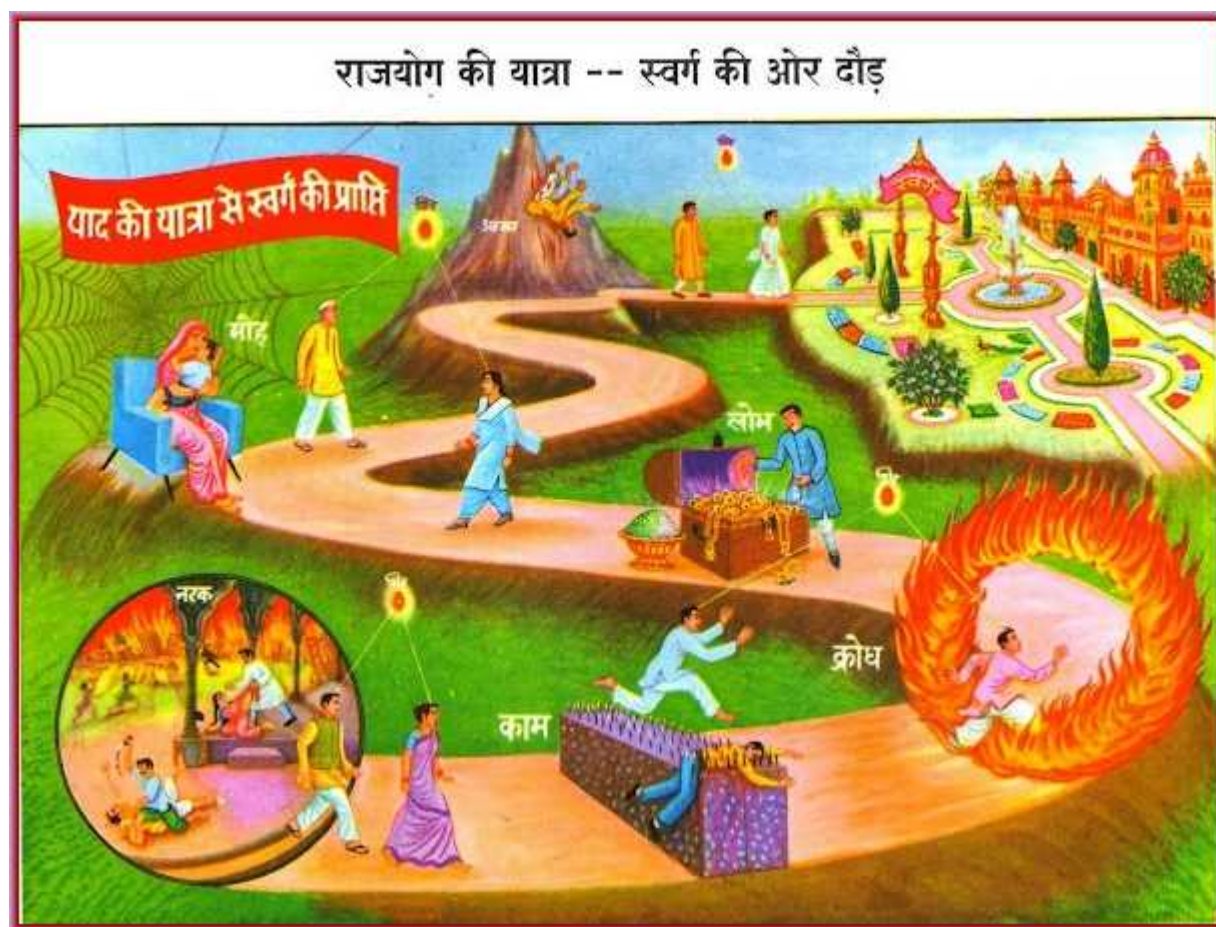
एक योगी को महान "निर्णय शक्ति" भी स्वतः प्राप्त हो जाती है। वह उचित और अनुचित बात का शीघ्र ही निर्णय कर लेता है। वह व्यर्थ सकल्प और परचिन्तन से मुक्त होकर सदा प्रभु चिंतन में रहता है। योग के अभ्यास से मनुष्य



को "सामना करने की शक्ति" भी प्राप्त होती है । यदि उसके सामने अपने निकट सम्बन्धी की मृत्यु-जैसी आपदा आ भी जाये अथवा सांसारिक समस्याएँ तूफान का रूप भी धारण कर ले तो भी वह कभी विचलित नहीं होता और उसका आत्मा रूपी दीपक सदा ही जलता रहता है तथा अन्य आत्माओं को ज्ञान-प्रकाश देता रहता है ।

अन्य शक्ति, जो योग के अभ्यास से प्राप्त होती है, वह है "सहयोग की शक्ति" एक योगी अपने तन, मन, धन से तो ईश्वरीय सेवा करता ही है, साथ ही उसे अन्य आत्माओं का भी सहयोग स्वतः प्राप्त होता है, जिस कारण वे कलियुगी पहाड़ ( विकारी संसार) को उठाने में अपनी पवित्र जीवन रूपी अंगुली देकर स्वर्ग की स्थापने के पहाड़ समान कार्य में सहयोगी बन जाते हैं ।

### राजयोग की यात्रा - स्वर्ग की ओर दौड़



राजयोग की यात्रा - स्वर्ग की ओर दौड़ राजयोग के निरंतर अभ्यास से मनुष्य को अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं । इन शक्तियों

के द्वारा ही मनुष्य सांसारिक रुकावटों को पार कर्ता हुआ आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर होता है । आज मनुष्य अनेक प्रकार के रोग, शोक, चिन्ता और

परेशानियों से ग्रसित है और यह सृष्टि ही घोर नरक बन गई है । इससे निकलकर स्वर्ग में जाना हर एक प्राणी चाहता है लेकिन नरक से स्वर्ग की ओर का मार्ग कई रुकावटों से युक्त है । काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार उसके रास्ते में मुख्य बाधा डालते हैं । पुरुषोत्तम संगम युग में ज्ञान सागर परमात्मा शिव जो सहज राजयोग की शिक्षा प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा दे रहे हैं, उसे धारण करने से ही मनुष्य इन प्रबल शत्रुओं (५ विकारों) को जीत सकता है ।

चित्र में दिखाया है कि नरक से स्वर्ग में जाने के लिए पहले-पहले मनुष्य को काम विकार की ऊंची दीवार को पार करना पड़ता है जिसमें नुकीले शीशों की बाढ़ लगी हुई है । सको पार करने में कई व्यक्ति देह-अभिमान के कारण से सफलता नहीं प्राप्त कर सकते हैं और इसीलिए नुकीले शीशों पर गिरकर लहू-लुहान हो जाते हैं । विकारी दृष्टि, कृति, वृति ही मनुष्य को इस दीवार को पार नहीं करने देती । अतः पवित्र दृष्टि (Civil Eye) बनाना इन विकारों को जीतने के लिए अति आवश्यक है ।

दूसरा भयंकर विघ्न क्रोध रूपी अग्नि-चक्र है । क्रोध के वश होकर मनुष्य सत्य और असत्य की पहचान भी नहीं कर पाता है और साथ ही उसमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि विकारों का समावेश हो जाता है जिसकी अग्नि में वह स्वयं तो जलता ही है साथ में अन्य मनुष्यों को भी जलाता है । इस भधा को पार करने के लिए 'स्वधर्म' में अर्थात् 'मैं आत्मा शांत स्वरूप हूँ' - इस स्थिति में स्थित होना अत्यावश्यक है ।

लोभ भी मनुष्य को उसके सत्य पथ से प्रे हटाने के लिए मार्ग में खड़ा है । लोभी मनुष्य को कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती और वह मन को परमात्मा की याद में नहीं टिका सकता । अतः स्वर्ग की प्राप्ति के लिए मनुष्य को धन व खजाने के लालच और सोने की चमक के आकर्षण पर भी जीत पानी है ।

मोह भी एक ऐसी बाधा है जो जाल की तरह खड़ी रहती है । मनुष्य मोह के कड़े बन्धन-वश, अपने धर्म व कार्य को भूल जाता है और पुरुषार्थ हीन बन जाता है । तभी गीता में भगवान ने कहा है कि 'नष्टोमोहा स्मृतिर्लब्धाः' बनो, अर्थात् देह सहित देह के सर्व सम्बन्धों के मोह-जाल से निकल कर परमात्मा की याद में स्थित हो जाओ और अपने कर्तव्य को करो, इससे ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकेगी । इसके

लिए आवश्यक है कि मनुष्यात्मा मोह के बन्धनों से मुक्ति पाए, तभी माया के बन्धनों से छुटकारा मिलेगा और स्वर्ग की प्राप्ति होगी ।

अहंकार भी मनुष्य की उन्नति के मार्ग में पहाड़ की तरह रुकावट डालता है । अहंकारी मनुष्य कभी भी परमात्मा के निकट नहीं पहुँच सकता है । अहंकार के वश ,मनुष्य पहाड़ की ऊंची छोटी से गिरने के समान चकनाचूर हो जाता है । अतः स्वर्ग में जाने के लिए अहंकार को भी जीतना आवश्यक है । अतः याद रहे कि इन विकारों पर विजय प्राप्त करके मनुष्य से देवता बनने वाले ही नर-नारी स्वर्ग में जा सकती हैं, वरना हर एक व्यक्ति के मरने के बाद जो यह ख दिया जाता है कि 'वह स्वर्गवासी हुआ', यह सरासर गलत है । यदि हर कोई मरने के बाद स्वर्ग जा रहा होता तो जन-संख्या कम हो जाती और स्वर्ग में भीड़ लग जाती और मृतक के सम्बन्धी मातम न करते ।